सरकारी नीतियों और कामकाज में न्यायालय का बढ़ता हस्तक्षेप कितना उचित?

सरकार के कामों में न्यायपालिका के हस्तक्षेप से दिन पर दिन भारतीय कार्यपालिका (संसद एवं विधान सभा) का मूलभूत ढांचा बिगड़ता जा रहा है। हाल ही में वित्त मंत्री श्री अरुण जेटली ने भी न्यायालयों द्वारा ज्यादा अधिकार लिए जाने पर रोक लगाने की बात कही है। भारत के समान कानून वाले देशों में न्यायालयों को इतने हस्तक्षेप की आजादी नहीं है।

न्यायालयों के हस्तक्षेप की शुरूआत क्यों हुई?

समाज के पिछड़े तथा दलित वर्ग को जनहित याचिका (PIL) की सुविधा प्रदान की गई। इससे न्यायालय को आम जनता को उसके मूलभूत अधिकारों और सामाजिक न्याय दिलवाने के लिए सक्रिय होकर आगे आने का मौका मिला। न्यायालयों की इस सक्रियता का भारत सहित विदेशों में भी स्वागत किया गया।

सन् 1980 में कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने समाज के कुछ विशेष वर्ग के संवैधानिक अधिकारों के हनन की ओर सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया। एक तरह से जनहित याचिका की शुरूआत ही इससे हुई। इससे प्रभावित होकर दक्षिण अफ्रीका के संविधान के अनुच्छेद 38 में इस तरह की सुनवाई को शामिल कर लिया गया।

सन् 1977 में आपातकाल की समाप्ति के बाद सन् 1978 में संविधान में 44वां संशोधन किया गया। इसमें संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से हटा दिया गया। इसकी भरपाई के लिए न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधिकार और अनुच्छेद 14 के कानून के समक्ष समानता के अधिकार को विस्तार देकर न्यायपालिका को नागरिकों के मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा के लिए अतिरिक्त शक्ति दे दी।

न्यायपालिका की सीमा

वस्तुतः जनहित याचिका की व्यवस्था समाज के पिछड़े वर्गों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति तथा सुरक्षा को बनाए रखने के लिए की गई थी, जिसमें न्यायालयों को सरकारी विभागों के साथ कदम मिलाकर चलना था। इसका उद्देश्य न्यायालयों द्वारा सरकारी और सार्वजनिक विभागों की निगरानी या उनकी कार्यप्रणाली में सुधार करना नहीं था।

जनहित याचिकाओं के बदलते स्वरूप के चलते अब न्यायालय मंत्रियों के पेट्रोल पम्प, दुकानें वगैरह आवंटित करने के अधिकार में सुधार करने में लग गये हैं। इतना ही नहीं, वे महत्वपूर्ण सार्वजनिक संस्थानों और अधिकारियों के आचरण संबंधी नियमों को भी नियंत्रित कर रहे हैं। चुनाव आयोग को निर्देश दे रहे हैं कि वे

प्रत्याशियों से उनके आपराधिक रिकार्ड तथा संपत्ति आदि का ब्योरा मांगे। चिकित्सा एवं इंजीनियरिंग महाविद्यालयों में आरक्षण तथा कार्यालयों में महिलाओं की सुरक्षा तक को लेकर वे निर्देश दे रहे हैं।

यहाँ तक कि कार्यपालिका की कार्यवाहियों पर भी उसका नियंत्रण बढ़ता जा रहा है। झारखंड विधानसभा अध्यक्ष को सारी कार्यवाहिया रिकार्ड करने का निर्देश दिया गया, जबकि अनुच्छेद 212 न्यायालयों को कार्यपालिका की कार्यवाहियों के बारे में जानकारी लेने की इजाजत नहीं देता।

इसी तरह 2जी स्पैक्ट्रम मामले में न्यायालय की बैंच टेलीकॉम रेग्यूलेटरी अथारिटी ऑफ इंडिया से सहमत नहीं हुई और उसने सरकार द्वारा जारी किए 122 लाइसेंस रद्द कर दिये। साथ ही यह भी निर्देश दिया कि इसे सार्वजनिक नीलामी से ही दिया जाना चाहिए। इस पर राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 143 का हवाला देते हुए न्यायालय को इस पर पुनर्विचार करने के लिए कहा। इसके बाद एक बड़ी बेंच ने ऐसी नीलामी पर रोक लगा दी।

हम सब अब सरकारी व सार्वजनिक असंगतियों के छोटे–मोटे मामलों में भी सर्वोच्च न्यायालय की दखल के आदी होते जा रहे हैं। जबकि मौलिक अधिकारों (संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत आने वाले) से जुड़ी याचिकाओं की सुनवाई वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय में होनी चाहिए। वास्तव में अनुच्छेद 21 और 14 से जुड़ी जनहित याचिकाओं में कोई खास कानूनी विवाद नहीं होते हैं। न्यायालय का काम मूलतः सरकारी कामकाज और प्रशासन को बेहतर बनाने की दिशा में होना चाहिए।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में श्री टी.आर.अंध्यरूजिना के लेख पर आधारित।